इष्टोपदेश, पूज्यपादस्वामी का कहा हुआ है। ग्यारहवीं गाथा चलती है। देखो! यह श्लोक है बीच में, यह ज्ञानार्णव का श्लोक है। क्या कहते हैं? यहाँ आया न अन्तिम? कि **आचार्यों ने इन दोनों की जोड़ी बतलाई है। बाकी के दोष इस जोड़ी में ही शामिल हैं, जैसा कि कहा गया है – 'यत्र रागः पदं धते'।** जहाँ राग-द्वेष (होते हैं),

यह मिथ्यात्व सहित के राग-द्वेष की बात है। उसका क्या अर्थ? कि **'जहाँ राग अपना पाँव जमाता है,...** परद्रव्य देव-शास्त्र-गुरु इत्यादि हितकारी हैं - ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व का राग है और शरीर शोषणयोग्य है, शरीर में से माल निकालने योग्य है - यह द्वेष है। समझ में आया? जहाँ राग होता है, किसका राग यह? ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ - ऐसा जहाँ अन्तर में ज्ञाता का भान नहीं, उसे अपने अतिरिक्त अन्य पदार्थ अथवा स्वयं मैं, यह ठीक हूँ और ये अठीक है - यह राग और द्वेष करने का अभिप्राय हुआ। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है। उन्हें जब हितकारी - ऐसा माने तो उस परद्रव्य के प्रति इसे राग मिथ्यात्वसहित का हुआ। सूक्ष्म बात पड़ी। आहा..हा..! ऐसे उसकी श्रद्धा, राग करना, वह तो पुण्य है, परन्तु वे मुझे हित के करनेवाले हैं, परद्रव्य मेरा हित कर देगा - यह मान्यता मिथ्यात्व सहित का राग है। यह बात है। आहा..हा..! अन्य लोगों को कठिन पड़े, हों! समझ में आया? ऐ.. न्यालभाई!

जहाँ राग स्वयं स्थापित किया जाता है कि यह राग करनेयोग्य है... समझ में आया? वहाँ इससे प्रतिकूल पर द्वेष हुए बिना रहता ही नहीं। जगत में इष्ट और अनिष्ट पदार्थ कोई है ही नहीं। आत्मा ज्ञाता और परपदार्थ ज्ञेय, बस! इतना सम्बन्ध है। इससे अधिक सम्बन्ध डाले कि ये पदार्थ मुझे शरीरादि मिले हैं, उन्हें अपने को शोषण करना चाहिए, माल निकालना चाहिए। शरीर ऊपर से माल (निकालना चाहिए), यह भी पर जड़ में से माल निकालने का भाव है।

मुमुक्षु : सदुपयोग तो करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही मिथ्यादृष्टि जीव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शरीर अपवास-बपवास से लाभ करना - ऐसा कहते हैं। शरीर में से लाभ हो। अपवास करें, यह करें तो शरीर में से जीव को लाभ हो, मूढ़ है, कहते हैं। शरीर में से लाभ कहाँ से (होगा)? लाभ तो आत्मा में है। जरा, बहुत सूक्ष्म बात है।

आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसकी दृष्टि करके उसमें एकाग्रता से आत्मा को शान्ति का लाभ होता है। शरीर को अपवास करके शोषण करना और यह करें तो इसमें से अपने

को निर्जरा होगी, (ऐसा माननेवाले ने) परद्रव्य में हितबुद्धि मानी है। समझ में आया? यह मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्व का राग अनन्तानुबन्धी का है। गजब बात, भाई! यहाँ तो राग-द्वेष की एकताबुद्धिवाले की (बात की है)। कहो, समझ में आया?

उसमें भी है न? उसमें नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। यह बात ली है। द्रव्यलिंगी का जो आता है न? वहाँ द्रव्यलिंगी का आता है, हों! अज्ञानी पहले तो संसार में नरकादि के दुःख जानकर, स्वर्गादि में भी जन्म-मरणादि के दुःख जानकर संसार से उदास होकर मोक्ष को चाहता है। यही मिथ्यात्वभाव है। कारण कि स्वर्गादि में जन्म-मरण के दुःख जानकर संसार से उदास (होकर) मोक्ष को चाहता है। अब उन दुःखों को सब दुःख जानते हैं, परन्तु इन्द्र-अहमिन्द्रादि विषयानुराग से इन्द्रियजनित सुख भोगते हैं, उसे भी दुःख जानकर... स्वर्ग का दुःख, वह दुःख, दुःख ही है। पुण्य के फलरूप से स्वर्ग मिलता है, उसमें दुःख है - ऐसा जानकर, निराकुल सुख अवस्था को पहिचानकर... अपना आत्मा अनाकुल आनन्द है, उसे पहिचानकर अन्तर में दृष्टि, ज्ञान करे, उसे सच्चा सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

स्वर्गादि में जन्म-मरण के दुःख जानकर - ऐसा (कहा है), परन्तु स्वर्ग स्वयं ही दुःखरूप है। क्या कहा? नरक में दुःख जानकर, अरे! नरक में दुःख है, बापू! पाप नहीं करना और स्वर्ग में जन्म-मरण का दुःख है, इसलिए अपने को पुण्य करना। परन्तु स्वर्ग में दुःख ही है। जन्म-मरण का क्या? स्वर्ग में जन्मना और इन्द्रियों की आशा (रहे), वही दुःख है। जन्म-मरण का दुःख नहीं। समझ में आया? स्वर्ग का अवतार, विषयों का राग हो, वही दुःखरूप है। ऐसा नहीं जानता और स्वयं अपने स्वरूप को जाने बिना उस स्वर्ग के सुख में सुखबुद्धि रहे और जन्म-मरण को दुःख माने तो वह दृष्टि मिथ्यात्व है।

तथा विषय-सुखादि का फल नरकादि है। देखो! अरे! भई! विषय सुख का सेवन करूँगा तो नरक में जाऊँगा, यह मिथ्यात्व भाव है। उसे नरक के दुःख का डर है। उसे-मिथ्यादृष्टि को प्रतिकूलता लगती है। आहा..हा..! नरक के.... देखो है न? विषय सुखादि का फल नरक है। विषय सेवन करूँगा तो नरक में जाऊँगा। उस नरक के प्रतिकूल दुःख उसे प्रतिकूल दुःख लगते हैं। उसे वह चीज़ प्रतिकूल लगती है।

मुमुक्षु : पंचेन्द्रिय में सुख है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। इन्द्रिय के सुख में दुःख है, यह कहते हैं। अभी कब था ? धूल में। नरक में भी यह स्वयं नरकादिक है... विषय सुखादि का फल, विषय सेवन करूँगा (तो) नरक में जाऊँगा। अर्थात् यह तो उसे प्रतिकूलता लगी। विषयसुख स्वयं दुःखरूप है और आत्मा आनन्दरूप है – ऐसी तो दृष्टि की नहीं। समझ में आया ? विषय सेवन करूँगा तो नरक में जाऊँगा, इसलिए सेवन नहीं करना। परन्तु विषय सेवन का भाव ही दुःखरूप है।

मुमुक्षु : अभी तो विषय में सुख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में नहीं, यही कहते हैं। क्या कहते हैं ? आहाहा! यह विषय सुखादिक के फल नरकादिक के हैं, ऐसे माननेवाले परद्रव्य को अहितकर मानते हैं, यह मिथ्यात्व है। शरीर अशुचिमय विनाशीक है। शरीर तो अशुचि मैल है, नाशवान है, ऐसा करके पोषण करनेयोग्य नहीं है–ऐसा माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। परद्रव्य को क्या है ? समझ में आया ? द्रव्यलिंगी के धर्म के साधन में अन्यथापना वर्णन किया है। शरीर अशुचि है, नाशवान है, पोषण करनेयोग्य नहीं है, यह द्वेष हुआ – शरीर के प्रति द्वेष हुआ। यह मिथ्यादृष्टि को ऐसा द्वेष होता है। सम्यग्दृष्टि (तो ऐसा मानता है कि) पोषणयोग्य में आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी दृष्टि करके राग घटानेयोग्य है। एक ही बात है। समझ में आया ? आहाहा! देखो! पोषण करनेयोग्य नहीं है। कुटुम्ब आदि सब स्वार्थ के सगे हैं। कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र, सब छोड़। यह तो द्वेष हुआ। समझ में आया ?

मुमुक्षु : शास्त्र में कहा है कि लुटेरे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लुटेरे हैं, यह मानता है। मूल में लुटेरे वे कोई नहीं हैं। वह तो लुटता है, तब लुटेरे कहने में आते हैं। स्त्री, पुत्र सब (ऐसा कहे), मेरा ऐसा करो। स्वार्थ के सगे, ऐसा मानना, वह उनके प्रति द्वेष करता है। वह तो जड़ चीज़ है, परचीज़ है। परचीज़ तुझे नुकसान कहाँ करती है ? स्त्री, पुत्र नुकसान करनेवाले हैं ही नहीं। मूढ़ ऐसा मानता है कि मुझे ये नुकसान करते हैं। (वह तो) परद्रव्य का अनिष्टपना माना। परद्रव्य की अनिष्ट की मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें से हटना किस प्रकार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के ज्ञान में रहना, वह हटना है। और (दूसरा) हटना कौन सा (था) ? वहाँ से हटा हुआ ही पड़ा है। आहाहा! आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसमें मैं स्थिर होऊँ, बस! राग उत्पन्न न हो (और) पर का लक्ष्य छूट जाता है, इतनी बात है। पर अहितकारी है या हितकारी, ऐसा कुछ है ही नहीं।

देखो! इत्यादिक परद्रव्यों का दोष विचारकर... परद्रव्य का दोष विचारकर उनका तो त्याग करता है, वह तो मिथ्यात्व है। परद्रव्य का दोष विचारकर छोड़े, वह तो मिथ्यात्व हुआ। परद्रव्य का दोष है ? या तेरी यह मान्यता पर में इष्ट-अनिष्टपना मानना, वह तेरा दोष है ? आहाहा! समझ में आया ? और व्रतादि का फल स्वर्ग, मोक्ष है। हम व्रत पालेंगे तो स्वर्ग मिलेगा, मोक्ष मिलेगा। समझ में आया ? यह तो शरीर पर राग हुआ। तपश्चरण आदि पवित्र फल के देनेवाले हैं। लो! करो, उपवास। वह पवित्र फल देगा। और यह शरीर शोषणयोग्य है, और यह शरीर शोषणयोग्य है, यह मिथ्यात्वभाव है। परद्रव्य के प्रति द्वेष हुआ। परद्रव्य तो ज्ञेय है। दृष्टि में तत्त्व की खबर नहीं। जड़ तत्त्व में दोष कहाँ है ? उसमें है दोष ? शरीर में से लाभ होगा ? व्रत पालो शरीर में से कुछ लाभ होगा ? धूल में उसमें (लाभ) नहीं है।

यह देव-गुरु-शास्त्र आदि हितकारी है—इत्यादि परद्रव्य का गुण विचार कर, उन्हें अंगीकार करता है। इत्यादि प्रकार से किन्हीं परद्रव्यों को बुरा जानकर अनिष्टरूप श्रद्धान करता है, किसी परद्रव्य को भला जानकर इष्टरूप श्रद्धान करता है। अब उस परद्रव्य के इष्ट-अनिष्टपने का श्रद्धान करना, वह मिथ्या है। परद्रव्य इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। (इष्ट-अनिष्ट) तो मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा! दृष्टि मिथ्या है। परद्रव्य में कहाँ इष्ट-अनिष्टपना है ? और इस श्रद्धान से उदासीनता भी धारण (करता है)। उदास.. उदास.. किसी से (राग करना) नहीं। उदास.. उदास.. वह तो द्वेष बुद्धि हुई।

परद्रव्य अच्छा नहीं है, नुकसानकारक है। स्त्री-पुत्र (से नुकसान है)। उदास हो जाओ। यह तो द्वेषबुद्धि हुई। देखो! उदासीनता भी द्वेषबुद्धि होती है क्योंकि किसी को बुरा जानना, उसका नाम द्वेष है, लो! तब सम्यग्दृष्टि भी परद्रव्य को बुरा जानकर त्याग करता

है न? प्रश्न (किया) सम्यग्दृष्टि परद्रव्य को बुरा जानता ही नहीं। अपने राग-द्वेष को बुरा जानता है। स्वयं सरागभाव को छोड़ता है, इसलिए उसके कारण का भी त्याग हो जाता है, निमित्त का लक्ष्य छूट जाता है। वस्तु विचारने पर कोई परद्रव्य तो भला-बुरा है ही नहीं। देव-शास्त्र-गुरु भी आत्मा का भला कर दे या कुटुम्ब-कबीला आत्मा का नुकसान कर दे, ऐसा कोई द्रव्य है ही नहीं। कोई ऐसे द्रव्य हैं ही नहीं कि आत्मा का कोई भला कर दे और बुरा कर दे, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अपवाद है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें कोई अपवाद-वपवाद नहीं होता। कहो, समझ में आया इसमें? क्या (कहा)? यह देव-शास्त्र-गुरु आत्मा का भला कर दे तो परद्रव्य भला कर दे, यह मान्यता मिथ्यात्व है।

कहते हैं कि जहाँ राग अपना पैर धारे अर्थात् प्रेम करता है, वहाँ द्वेष होता है, अवश्य होता है। **या हो जाता है,...** द्वेष होता है। राग है, वहाँ द्वेष है। यह मिथ्यादृष्टि की बात है, हों! ज्ञानी को पर के प्रति इष्ट और अनिष्ट बुद्धि होती ही नहीं। इष्ट में इष्ट अपना स्वभाव और अनिष्ट राग और द्वेष। बस! तीसरी चीज़ है नहीं। समझ में आया? क्या?

इष्ट अपना स्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द की रुचि करना वह (है)। पुण्य-पाप के विकल्प, पुण्य और पाप दोनों अनिष्ट हैं। शुभ और अशुभराग दोनों अनिष्ट हैं। एक शुभराग को ठीक माने तो उसमें राग हुआ, पाप के ऊपर द्वेष हुआ, यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! श्रद्धा की बात की लोगों को खबर नहीं है। बाह्य त्याग करे, और फिर माने कि हम त्यागी हैं। बापू! सूक्ष्म बात है, भाई!

आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वह किस चीज़ को इष्ट-अनिष्ट माने? और किस चीज़ को छोड़ने से लाभ होगा और किस चीज़ के संग से लाभ होगा? किस चीज़ के छोड़ने से लाभ होगा और किस चीज़ के संग से लाभ होगा? (पर से लाभ-नुकसान) है ही नहीं। समझ में आया? इस आत्मा के संग से लाभ और विकार के संग से नुकसान है।

मुमुक्षु : त्याग करना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसका त्याग? कहते हैं न? स्वरूप में एकाग्र होने पर

राग छूट जाता है, उसका नाम राग का त्याग कहने में आता है। परमार्थ से भी राग का त्याग कर्ता आत्मा नहीं है। परमार्थ से भी राग के त्याग का कर्ता आत्मा नहीं है, क्योंकि राग-त्याग करूँ, ऐसा स्वरूप में नहीं है। स्वरूप शुद्ध है, उसकी दृष्टि होने पर, एकाग्र होने पर राग उत्पन्न नहीं होता, उसने-आत्मा ने राग का अभाव किया, ऐसा व्यवहारनय से कथन किया जाता है। राग कहाँ है ? राग आत्मा में उत्पन्न होता नहीं, इसका नाम राग का त्याग है। छोड़े क्या ? परवस्तु को मैं छोड़ूँ और ग्रहण करूँ, यह मिथ्यात्वभाव है। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! यह राग-द्वेष की बात चलती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : मूल मुद्दे की रकम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दे की रकम है।

देखो! जहाँ राग अपना पैर धरता है अर्थात् जहाँ राग होता है कि यह मुझे इष्ट है, यह इष्ट है, वहाँ दूसरी चीज़ में अनिष्टता अवश्य आये बिना रहती नहीं। शरीर नुकसानकारी है, परिवार नुकसानकारी है, स्त्री नुकसानकारी है। क्या वह नुकसानकारी है ? स्त्री, कुटुम्ब नुकसानकारी है ? वह तो परद्रव्य है। हमको लूट डाला इन्होंने। इन्होंने लूटा है तुझे ? यह मूढ़ है। वे कहे न ? समझे न 'सुख से भजूँगा श्री गोपाल' आता है न ? 'भला हुआ टूट जंजाल।' उनके कारण क्या है ? स्त्री मर जाए तो अकेले रहेंगे और हम धर्म करेंगे, यह अनिष्टबुद्धि हुई। समझ में आया ? भाई! यह तो ऐसी बातें हैं।

अकेला चैतन्य निराला परद्रव्य के सम्बन्धरहित तत्त्व है। उसकी दृष्टि में कोई परद्रव्य किंचित्मात्र हितकारी-अहितकारी है ही नहीं। आहाहा! क्या करना इसमें ? ऐसे करने जाए तो ऐसे करे, छोड़ने जाए तो कहे मिथ्यात्व लगता है। उस मिथ्यात्व को छोड़ने जाता है, इसलिए नहीं। यह परपदार्थ प्रतिकूल है, इसलिए छोड़ता हूँ, यह मिथ्यात्वभाव है। परपदार्थ प्रतिकूल है ही नहीं। कोई प्रतिकूल अनिष्ट है ही नहीं। परपदार्थ तो ज्ञान में ज्ञेय है। ज्ञेय के बदले उसे प्रतिकूल माना तो वह मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : साहेब! पैसा होवे तो दान दिया जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसे का दान दिया जाए तो आत्मा में क्या आया ? पैसा तो धूल है। धूल का जाना-आना होवे, वह बात आत्मा के आधीन नहीं है। पैसे का जाना-

आना आत्मा के आधीन नहीं है। मैंने पच्चीस लाख में से पाँच लाख दिये। कौन दे? पच्चीस लाख के रजकण मैंने दिये, यह मान्यता ही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! पैसा कहाँ देता है? पैसा जड़ है, अजीव पुद्गल है। अब वह पुद्गल यहाँ से कहीं जाना, वह तो उसके अधिकार की बात है। अज्ञानी ऐसा मानता है कि पैसा रजकण धूल है, मैं उसका स्वामी हूँ और मैंने दिया - तो जड़ का स्वामी होता है, वह मिथ्यात्वदृष्टि है। समझ में आया? और मैंने दिया, वह भी जड़ का स्वामी हुआ, मिथ्यादृष्टि हुआ। कठिन बात है, भाई! आहाहा! धूल में भी नहीं। दस लाख, बीस लाख हुए, इसलिए पाँच लाख खर्च कर डालो, धर्म हो जाएगा। धूल में भी धर्म नहीं है। हाँ; उसमें राग की मन्दता करे तो पुण्य होता है और वापस ऐसा कहे कि मैंने दिये, मेरी चीज़ थी। जड़ मेरी चीज़ थी कि दूसरे को दिये? बसन्तलालजी! क्या करना? लोग सोनगढ़ के नाम से बहुत कहते हैं। कहते हैं, यह आचार्य को कह। आहाहा! कहो, मगनभाई! यह क्या है?

जहाँ राग होता है... कहते हैं भाई! आत्मा तो ज्ञाता-वीतरागस्वरूप है। किसी के प्रति, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति राग होता है। समझ में आया? परन्तु राग हेयबुद्धि से आत्मा में वर्तता है। राग से लाभ होता है और वह परद्रव्य है, इसलिए मुझे यह राग हुआ और वह परद्रव्य है, इसलिए मुझे अन्दर में धर्म का लाभ होगा, यह मान्यता अत्यन्त विपरीत है। लाभ की खान तो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है। उसके बदले लाभ का कारण निमित्त में और जड़ को-पर को माना। समझ में आया? अथवा उसमें राग हुआ, मन्द राग (हुआ) उस मन्द राग से मुझे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होगा, यह भी मिथ्यात्व शल्य है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

इन दोनों (राग-द्वेष) के आलम्बन से मन अधिक चंचल हो उठता है। देखो! जहाँ आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भान नहीं और यह ठीक-अठीक जहाँ भाव है, वहाँ मिथ्यात्वभाव से वह चंचल और अस्थिर हो जाता है। समझ में आया? यह मिथ्यात्वसहित के चंचलता की बात है, हों! ज्ञानी को जो जरा अस्थिरता हो जाती है, वह तो पुरुषार्थ की कमजोरी है न, (इसलिए होती है)। ज्ञानी को वे कोई भी रागादि आवें तो वह राग परवस्तु इष्ट है, इसलिए आता है, ऐसा नहीं है तथा राग करना, वह मेरा स्वभाव है- ऐसा नहीं है। इसलिए राग जरा आता है, उसे ज्ञातारूप से जानता है। समझ में आया? इसलिए उसे

चंचलता कहने में नहीं आती। दृष्टि की चंचलता है, वह चंचलता कहने में नहीं आती, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह चंचल.. आहाहा! ऐसा लेना... ऐसा लेना...

(संवत्) १९८२ में एक बार नहीं कहा था? 'जो जगत को तारे वह तिरे।' एक वकील आया था। उसने लिखा कि तिरे वह तारे। जो आत्मा तिरे, वह तिरनेवाले जीव को निमित्त होता है। तब (वह वकील कहे) ऐसा नहीं है। जो जगत को तारे वह तिरे। (यदि ऐसा हो) तो जगत को खोजने जाना पड़े कि चलो भाई! तुम तिरो तो मैं तिरूँगा। कहा, ऐसी बात नहीं होती।

आत्मा अपने स्वरूप से श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति से तिरता हो, शान्ति से तिरता हो, धर्म में से उद्धार करके अधर्म में से (तिरता हो)। वह जीव दूसरे तिरनेवाले के परिणाम को निमित्त कहने में आता है, यदि वह परिणाम प्रगट करे तो। दूसरा कोई तिरा दे और दूसरे को तारे तो इसका तिरना हो, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? जो ऐसा मानता है कि हमने बहुत जीवों को धर्म प्राप्त कराया न, उसमें से मुझे लाभ होगा, वह मूढ़ है-मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : प्रभावना....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसकी प्रभावना? वह तो इसकी पर्याय का लाभ इसके पास हो, उसमें तुझे क्या आया? तुझे विकल्प आया कि ऐसा होवे, तो विकल्प का पुण्य बँधेगा। ऐई! सम्यग्दृष्टि को विकल्प आवे परन्तु वह विकल्प शुभ होता है। वह शुभ पुण्य बाँधे, उस पुण्य का स्वामी ज्ञानी नहीं। दुनिया समझे तो उसका लाभ मुझे मिले। उसकी पर्याय से वह समझे, उसका लाभ मुझे मिले, ऐसा तीन काल में है नहीं। समझ में आया?

उपदेश देना और उसमें रुकना। क्योंकि उसमें लाभ होता है। मिथ्या बात है, यहाँ तो कहते हैं। उपदेश में वाणी निकले, वह उपदेश की वाणी जड़ की है। उसमें रुकना, वह विकल्प है, शुभभाव है। वह पुण्य-बन्ध का कारण है, धर्म का कारण नहीं। आहाहा! एक भी बात को समझे नहीं। यह उसका नाम यहाँ राग-द्वेष कहते हैं। हम बहुतों को समझायें तो बहुत लाभ हो जाए। बहुतों को ढूँढ़ने जाना? न आवे तो इसका केवलज्ञान लटकता (रुकता) होगा?

मुमुक्षु : यह तो सब अकेली निश्चय की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निश्चय की अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् सत्य का रणकार, यथार्थ सत्य का भनकार। इसका नाम निश्चय है। खोटी बात के उपकार के कथन, वह सब व्यवहार। कहो वजुभाई! यह तो सब निश्चय है।

राग-द्वेष के आलम्बन से मन अधिक चंचल (होता है) देखो! यह करनेयोग्य है और यह करनेयोग्य नहीं और इससे मुझे लाभ होगा और इससे मुझे नुकसान होगा। समझ में आया? देखो न! बहुत से लगते हैं न कि बहुत जीव यदि मेरे से समझे न (तो) मेहनत करो, मेहनत। समझ में आया? परन्तु तुझसे समझे किस प्रकार? वह तो उनकी योग्यता होगी, तब समझेंगे। तुझे विकल्प आवे, वह पुण्यबन्ध का कारण है। उससे संवर-निर्जरा (नहीं) होगी। लाख जीव धर्म प्राप्त करे, सम्यग्दृष्टि होवे तो उपदेश करनेवाले को कुछ संवर-निर्जरा का लाभ होता होगा या नहीं? जरा भी नहीं। उपदेश देनेवाले का शुभविकल्प था, उतना पुण्य बँधता है। वह तो राग का निषेध होकर अन्दर की एकाग्रता वर्तती है, उतना स्वभाव का लाभ है। बाकी पर के कारण लाभ भी नहीं और पर के कारण नुकसान भी नहीं। एक भी जीव इससे न समझे तो इसे नुकसान नहीं और लाख मनुष्य समझ जाए तो उससे संवर-निर्जरा का (लाभ नहीं)। संवर-निर्जरा का तो लाभ नहीं, परन्तु पुण्य का लाभ भी उसके कारण नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : बातें-बातें.. तो व्यवहार कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार रहा न! यह पुण्य / शुभभाव आया वह। शुभभाव आया, वह व्यवहार है। उससे पुण्य बँधता है, इतना। समझ में आया? श्रीमद् भी ऐसा कहते हैं कि यदि एक जीव को भी यथार्थ धर्म प्राप्त करावे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे अर्थात् शुभभाव हो और बाँधे, इतना। प्राप्त करावे, इसलिए भी वापस बात यह ली। तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ऐसा कि वह शुभभाव हो, वह बाँधे, ऐसा। बाकी अबन्धभाव नहीं। श्रीमद् में यह वाक्य है। अबन्धपने का मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो आत्मा के आश्रय से होता है; इसके अतिरिक्त कहीं अबन्धपरिणाम नहीं होते। पर के कारण अबन्धपरिणाम माने तो कहते हैं कि वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। चंचलता खड़ी होती है।

और जितने दोष हैं, वे सब राग-द्वेष से संबद्ध हैं,.. लो! विपरीत मिथ्यात्व,

एकान्त मिथ्यात्व आदि बहुत मिथ्यात्व के भाव हैं न ? वे सब राग-द्वेष के सम्बन्ध से ही अज्ञान में उत्पन्न होते हैं। **जैसा कि कहा गया है – 'आत्मनि सति परसंज्ञा'।**

निजत्व के होनेपर पर का ख्याल हो जाता.. लो! जब अपने आत्मा को अकेला राग करे तो पर के ऊपर द्वेष हुए बिना नहीं रहे। अथवा यह मेरे हैं, यह मेरे हैं-ऐसा मानकर राग करे तो उसे पर के ऊपर, दूसरे के ऊपर द्वेष आये बिना नहीं रहेगा। **निजत्व के होने पर..** ये हमारे, शरीर हमारा, यह अंगीत हैं, यह सब साधन हैं। लो! समझ में आया ? आहाहा! ये धर्म के उपकार भी मुझे धर्म में, निश्चय धर्म में उपकार करते हैं। परद्रव्य क्या करे ? मोरपिच्छी और कमण्डल, वह तो परचीज़ है, परद्रव्य है। परद्रव्य आत्मा को उपकार करेगा धर्म का ? समझ में आया ? भारी कठिन बात है, भाई! जगत को परपदार्थ और स्व -पदार्थ की भिन्नता की खबर नहीं है, (इसलिए) उसे परपदार्थ में कहीं भी लाभबुद्धि से प्रीति हुए बिना नहीं रहेगी और दूसरे पदार्थ में द्वेषबुद्धि हुए बिना नहीं रहेगी।

निजत्व के होनेपर पर का ख्याल हो जाता.. ये मेरे हैं तो वे दुश्मन हैं। यह मेरा देश है तो वह पर का देश है। देश.. देश। वह सब राग-द्वेष के करनेवाले मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है, ऐसा कहते हैं। आया है या नहीं ? ऐई! वासुदेवभाई! समझ में आया या नहीं यह ?

और जहाँ निज-पर का विभाग (भेद) हुआ.. जहाँ मेरा और तेरा का भाग पड़ा (कि) यह मेरा और यह तेरा, यह मेरा देश और यह तेरा देश, यह मेरा परिवार और यह तेरा परिवार, (वहाँ) राग-द्वेष हुआ और राग-द्वेष (हुआ, वह) मिथ्यात्व का राग-द्वेष हुआ, हों! ज्ञानी को जरा राग, आसक्ति हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ होने पर भी उसे राग हो, वह अल्प दोष है क्योंकि वह राग स्त्री के कारण होता है, ऐसा नहीं मानते। यह मुझे प्रिय है, इसलिए राग होता है - ऐसा नहीं मानते। समझ में आया ? समकिती को छियानवें हजार स्त्रियों का राग भी अल्प दोष है और शरीर का ब्रह्मचर्य पालनेवाला भी, शरीर ठीक रहेगा, ब्रह्मचर्य पालन करूँगा तो शरीर ठीक रहेगा - ऐसा मानकर पालन करता है तो उसे मिथ्यात्व का दोष लगता है।

मुमुक्षु : बालब्रह्मचारी की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बालब्रह्मचारी रहूँगा तो शरीर निरोग रहेगा। जड़ की पर्याय

निरोगी रहेगी ? तेरे मन्द कषाय के परिणाम हों तो उस कारण से शरीर निरोग रहेगा ? समझ में आया ? भाई ! प्रभु ! तेरी चीज़ ही अलग है न ! वह पूर्ण आनन्द का कन्द है न ! वहाँ से आनन्द निकलता है ऐसा है; कहीं बाहर से आनन्द आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा !

निज-पर का विभाग (भेद) हुआ, वहाँ निज में रागरूप और पर में द्वेषरूप भाव हो ही जाते हैं। ऐसा कहा है, हों ! उन्होंने कहा है। निज में राग, पर बुरा और अपने में राग, ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है, हों ! उसमें लिखा है, अपना आत्मा भला और ये बुरे-खराब। ऐसा होता ही नहीं। भला-बुरा नहीं है। भला तो स्वभाव है, एकाग्र हो वह। समझ में आया ? दूसरे बुरे हैं, ऐसा नहीं है; वे तो ज्ञेय हैं। उसके बदले मैं भला और ये बुरे - ऐसा भी नहीं है। आहाहा ! बसंतलालजी ! यह ऐसी गड़बड़ कहाँ से खड़ी हुई ? कहते हैं।

निज में रागरूप और पर में द्वेषरूप भाव हो ही जाते हैं। बस इन दोनों के होने से अन्य समस्त दोष भी पैदा होने लग जाते हैं। भ्रमणा उत्पन्न हुई (कि) मेरे अतिरिक्त ये पदार्थ ठीक नहीं और यह ठीक। मैं एक भला और ये सब पदार्थ बुरे। सब बुरे नहीं हैं। तू ज्ञान और ये ज्ञेय - ऐसा कह न ! समझ में आया ? आहाहा ! **कारण कि वे सब इन दोनों के ही आश्रित हैं।** यह राग-द्वेष की एकताबुद्धि है, वहाँ सब दोष उत्पन्न होते हैं। राग और द्वेष की एकताबुद्धि की यहाँ बात चलती है, हों ! अर्थात् अज्ञानी परपदार्थ में इष्ट-अनिष्ट मानता है।

वह राग-द्वेष की जोड़ी तो हुई मंथानी के डण्डे को घुमानेवाली रस्सी के फाँसा के समान.. यह 'मंथराचल' पर्वत का दृष्टान्त देते हैं। वह डोरी होती है न ऐसी ?..... **राग-द्वेष की जोड़ी तो हुई मंथानी के डण्डे को..** ऐसे मंथन करे न ? उसका दण्ड होवे न ? दण्ड (अर्थात्) यह लकड़ी। **रस्सी के फाँसा...** रस्सी का फाँसा होवे उसे। वह फाँसा हुआ न अन्दर ? **और उसका घूमना कहलाया जीव का रागादिरूप परिणमन।** रागादिरूप परिणमन हुआ कि यह ठीक और यह अठीक, यह ठीक और अठीक। ऐसे राग-द्वेष का परिणमन (हुआ करता है)। मिथ्यादृष्टि का भला-बुरा मानकर और परिणमन (हुआ करता है)।

सो जैसे लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि नेतरी के खींचा-तानी से जैसे

मंथराचल पर्वत को समुद्र में बहुत काल तक भ्रमण करना पड़ा। अन्यमत का दृष्टान्त दिया है। अन्यमत में है न? कृष्ण ने मेरुपर्वत (मंथराचल) को मंथन किया। यह समझे न? **मंथराचल पर्वत को समुद्र में बहुत काल तक भ्रमण करना पड़ा। उसी तरह स्व-पर विवेकज्ञान न होने से..** यह पूरा सिद्धान्त यहाँ लेना है। पर पदार्थ चाहे तो देव-गुरु हो, चाहे तो पंच परमेष्ठी हो, चाहे तो निगोद कहो, चाहे तो शत्रु हो - सब आत्मा के ज्ञान में ज्ञेय है। आत्मा के ज्ञान में ज्ञेय है - जाननेयोग्य है। यह मुझे ठीक पड़ता है और यह मुझे अठीक (पड़ता है), ऐसा वस्तु में नहीं है, यहाँ ज्ञान में नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : खड़ा करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ा किया अज्ञान में। सेवा-सुश्रुषा करनेवाले अच्छे होवें तो परिणाम में अन्तर पड़ता है। फावाभाई! ऐसा नहीं (होता)? सेवा-वेवा करनेवाले होवे तो? धूल में भी अन्तर नहीं पड़ता, सुन न! कहते हैं कि तुझे भान नहीं है। सेवा करनेवाले अच्छे हों तो परिणाम अच्छे होते हैं। शास्त्र में नहीं आता। मरते हुए उस साधु को... आता है कड़ाया। क्या कहलाता है वह? 'भगवती आराधना।' उस आराधना में साधु संथारा करते हैं न? फिर उपदेश देते हैं। वह तो निमित्त की बातें हैं। उसके परिणाम तो उससे होते हैं। वे परिणाम कहीं किसी से होते हैं? गजब बात, भाई! व्यवहार की और परमार्थ की। ऊँचा चढ़ावे। कढ़ाही स्वयं सिंके और सीरा (हलुवा) को सेंक दे। सीरा.. सीरा..। सीरा को क्या कहते हैं? हलुवा.. हलुवा..। ऐसे स्वयं सहन करके भी उसका संथारा ठीक से करा दे। वजुभाई! ये सब बातें व्यवहार की हैं, भाई! आहाहा!

सम्यग्दृष्टि साधु तो अपने स्वरूप आनन्द में रमते हैं। जरा विकल्प हो जाता है तो मुनि कहते हैं कि अरे! महाराज! आपने तो संथारा-समाधि की है। इसलिए स्वयं ही स्वयं से बदल जाते हैं। उसे कोई निमित्त से बदल जाते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब कठिन पड़ता है। ऐसे शास्त्र में - भगवती आराधना में ऐसे कथन आते हैं। क्या कहलाता है? कवच। भगवती आराधना में कवच अधिकार है न? साधु समाधि करते हैं न? तो किसी समय विकल्प आता है। आहा! दूसरे मुनि कहे, अरे! महाराज! आप तो आनन्द के आहार में स्थित हैं न! आनन्द का आहार लो न! यह विकल्प क्या आया? वह बदल गये। वे अपने पुरुषार्थ से, हों!

मुमुक्षु : .....रवैया क्या करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : रवैया क्या करते हैं ? राग-द्वेष से रवैया बदलता है, ऐसा कहते हैं। चार गति में अपने आप घूमता नहीं, राग-द्वेष के कारण घूमता है, ऐसा कहते हैं।

स्व-पर विवेकज्ञान न होने से रागादि परिणामों के द्वारा जीवात्मा अथवा कारण में कार्य का उपचार करने से,.. देखो! **रागादि परिणामजनित कर्मबन्ध के द्वारा..** ऐसा। **रागादि परिणामों के द्वारा जीवात्मा..** अथवा कारण में कार्य का उपचार करने से। जो कर्म बँधा न ? उसके (द्वारा) संसारी जीव **कर्मबन्ध के द्वारा बँधा हुआ संसारीजीव,..** वास्तव में तो अपने परिणाम से है परन्तु उसमें से कारण का कार्य में (उपचार) डाला। समझ में आया ? कारण में कार्य का उपचार किया।

रागादि परिणामजनित कर्मबन्ध के द्वारा बँधा हुआ संसारीजीव, अनादिकाल से संसार में घूम रहा है,.. लो! **घूम रहा है, घूमा था और घूमता रहेगा।** भटकता है, भटका है, भटकेगा। आहाहा! कारण में कार्य का उपचार (करने से) राग-द्वेष से है। यह जीवात्मा है परन्तु अभी कर्म से हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? ....समझ में आया ?

मतलब यह है कि 'रागादि परिणामरूप भावकर्मों से द्रव्यकर्मों का बन्ध होता'.. लो! यह इष्ट-अनिष्ट पदार्थ मानने से जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव होते हैं, उनसे कर्मबन्धन होता है। अपने अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं, वे सब जाननेयोग्य हैं। वे लोग कहते हैं कि देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा करना, वह मिथ्यात्व, (तो) ऐसा नहीं, हों! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह तो राग है। परन्तु राग से मेरा कल्याण होगा, परमार्थ धर्म होगा, यह मिथ्यात्व है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो राग है, शुभराग है, वह राग, मिथ्यात्व नहीं है परन्तु उस राग से मेरा कल्याण होगा, मेरे आत्मा का कल्याण होगा - संवर-निर्जरा होगी, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। समझ में आया ? देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा तो समकिती को भी होती है। समकिती को नहीं होती ? मुनि को होती है, गणधरों को देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा होती है, वह तो राग है। परन्तु वह राग है, वह भगवान के कारण हुआ नहीं है। मुझमें निर्बलता है, इससे शुभराग जो बाहर में होता है, उससे यह शुभराग हुआ। जानता है, मेरा कर्तव्य नहीं है, मेरा स्वभाव नहीं है परन्तु उस भूमिका में आये बिना रहता नहीं है और

अज्ञानी तो मानता है कि राग ही मुझे कल्याण का कारण है। राग कल्याण का कारण और स्वभाव कल्याण का कारण हो, दोनों हो एकसाथ में ? राग कल्याणरूप परिणमता है ? राग है, वह स्वरूपरूप परिणमता है ? तब स्वरूप स्वयं अपने में एकाग्र हो तो स्वरूप स्वयं अपने स्वरूपरूप परिणमता है। यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? कितना याद रखना इसमें ? वापस एक याद रखें वहाँ दूसरा (आवे), देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा करना। अब यहाँ कहते हैं श्रद्धा में धर्म माने तो मिथ्यात्व है। ऐई ! अब इसमें कितना सीखना।

मुमुक्षु : सर्वत्र सिद्धान्त तो एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धान्त एक ही है, कहीं अन्तर नहीं है। **रागादि परिणामरूप..** यह मिथ्यादृष्टि के राग की बात है, हों ! इष्ट-अनिष्ट मानता है, उसकी (बात है)। सम्यग्दृष्टि का राग, वह मिथ्यात्वसहित नहीं है, एकत्वबुद्धि से नहीं है। यह तो एकत्वबुद्धि है। शरीर ठीक है तो अपने को व्रत पलते हैं, ठीक न हो तो व्रत नहीं पलते, यह मिथ्यात्व का भाव है। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है। अत्यन्त स्व और पर का विवेक जिसे नहीं है, वह परद्रव्य से मुझे लाभ और नुकसान मानता है। ऐसे जीव के रागादि परिणाम- उस भावकर्म से द्रव्यकर्म का बन्ध होता है। लो !

ऐसा हमेशा से चला आ रहा है.. यह अनादि काल से चला आ रहा है। नौवें ग्रैवेयक दिगम्बर मुनि-सन्त (होकर) गया। भावलिंग नहीं, द्रव्यलिंगी अट्ठाईस मूलगुण पालन करके (गया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' उसे भी यह शरीर की क्रिया ठीक चलती है उसमें मुझे लाभ होता है, यह मिथ्यात्वभाव है, वह रह गया है और पुण्यभाव जो कुछ महाव्रत का हुआ, वह मुझे धर्म है। उस पुण्य को धर्म माना और शरीर की क्रिया मुझसे होती है, वह मिथ्यात्वभाव पड़ा है। समझ में आया ? नौवें ग्रैवेयक में गया परन्तु यह मिथ्यात्वभाव उसने मिटाया नहीं।

और हमेशा तक चलता रहेगा। लो ! अज्ञानी को तो जब तक आत्मा शुद्ध ज्ञायक है, ऐसी दृष्टि नहीं करे और परपदार्थ में इष्ट-अनिष्ट (के) भाग करेगा, तब तक चौरासी के अवतार चलेंगे। **सम्भव है कि किसी जीव के यह रुक भी जाय।** समझ में आया ? स्वभाव की दृष्टि करे तो रुक जाए, ऐसा कहते हैं। स्वभाव चैतन्यमूर्ति मैं हूँ, मैं शुद्ध ही हूँ।

राग का एक कण भी करना, वह मेरे स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? **किसी जीव के यह रुक भी जाय।** अर्थात् परपदार्थ में इष्ट-अनिष्टबुद्धि छोड़कर, अपना आत्मा ही निजानन्दस्वरूप है, ऐसी एकत्वबुद्धि स्वभाव में करनेवाले को, राग की एकताबुद्धि छोड़नेवाले को संसार रुक जाता है, उसे संसार नहीं रहता। समझ में आया? **जैसा कि कहा गया है –'जो खलु संसारत्थो'।** में ८५ की गाथा में आता है। पंचास्तिकाय की १२८, १२९ और १३० यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के पंचास्तिकाय की गाथा है। उसकी तीन गाथायें हैं। है न देखो! **'संसारत्थो'**

जो संसार में रहनेवाला जीव है,.. संसार अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष में रहनेवाला जीव है। **उसका परिणाम (रागद्वेष आदिरूप परिणमन) होता है,..** लो! उसे तो राग-द्वेष आदि परिणाम होते हैं। आत्मा के स्वभाव को चूककर, खण्ड-खण्ड राग और द्वेष, राग और द्वेष, राग और द्वेष, ये ही परिणाम होते हैं। **उस परिणाम से कर्म बँधते हैं।** वह शुभाशुभराग, पुण्य-पाप दोनों बन्ध के कारण हैं। नये कर्म बँधते हैं। **बँधे हुए कर्मों के उदय होने से मनुष्यादि गतियों में गमन होता है,..** लो! बाँधे हुए कर्मों के उदय से मनुष्य, स्वर्ग आदि देव की गति प्राप्त होती है।

मनुष्यादि गति में प्राप्त होनेवाले को (औदारिक आदि) शरीर का जन्म होता है,.. शरीर प्राप्त होता है। वैक्रियकशरीर और औदारिकशरीर (प्राप्त होता है), आत्मा प्राप्त कहाँ (होता है)? वहाँ तो शरीर प्राप्त होता है, कहते हैं। **शरीर होने से इन्द्रियों की रचना होती है,..** यह पाँच इन्द्रियाँ। आत्मा अरूपी भिन्न तत्त्व है, उसे यह मिला। **इन्द्रियों से विषयों (रूप रसादि) विषयों का ग्रहण होता है,..** ये इन्द्रियाँ पर के प्रति लक्ष्य करनेवाली होती है (अर्थात् कि) ज्ञान का लक्ष्य (वहाँ जाता है)। उसे शुभ-अशुभ माने। सूक्ष्म बात है, हों! पाँच इन्द्रियाँ अर्थात्? यह भगवान को देखना, वह इन्द्रिय का विषय है।

मुमुक्षु : किस इन्द्रिय का? आँख का?

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख का। जरा सूक्ष्म बात है। अकेला विषय अर्थात् भोग का विषय, ऐसा नहीं। अनीन्द्रिय जो आत्मा अपना सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे छोड़कर जितना पाँच इन्द्रिय के विषय करे, सब विषय का पुण्य-पाप का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ तो स्व और पर दो की बात है।

मुमुक्षु : भगवान पर....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान परद्रव्य या स्वद्रव्य हैं ? इस आँख का विषय है या चैतन्य के ज्ञान-सम्यग्दर्शन का विषय है वह ? सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा है। समझ में आया ? इन्द्रिय का विषय पर है। सम्यग्ज्ञान का विषय आत्मा, सम्यक्चारित्र का विषय आत्मा में स्थिरता और पाँच इन्द्रियों का विशय पर। चाहे तो वाणी सुने, चाहे तो भगवान को देखे, या स्त्री को देखना, या तो पर को (देखे) परन्तु है परसन्मुख का विषय।

मुमुक्षु : सब एक लाईन में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : विषयरूप से एक लाइन में। पुण्य-पाप के बन्धरूप से अन्तर है। बन्धरूप से एक प्रकार से परन्तु पुण्य-पापरूप से अन्तर, इतना अन्तर है। समझ में आया ? आहाहा! आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का अन्तर विषय होना, ध्येय बनना, वही सम्यग्दर्शन का विषय है। यह इन्द्रिय का विषय, ज्ञानी का विषय है ही नहीं। समझ में आया ? तथापि जितना पर के प्रति लक्ष्य जाता है, उतना उसे राग हुए बिना नहीं रहता। स्त्री, कुटुम्ब की ओर लक्ष्य जाए तो अशुभराग (होता है और) देव-शास्त्र-गुरु के प्रति (लक्ष्य) जाए तो शुभराग (होता है)।

मुमुक्षु : छाया-धूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : छाया-धूप जितना क्या रखे ? कहो, समझ में आया ? बन्धरूप से एक प्रकार और विषय के ज्ञेयरूप से भी एक ही प्रकार। मात्र यह शुभभाव है, वह (दूसरा) अशुभभाव है। परन्तु शुभभाव में विषय पर होता है, शुभभाव में विषय स्व नहीं होता। शुद्धभाव में विषय स्व होता है। समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय शुद्ध, उसका विषय आत्मा और शुभाशुभपरिणाम का विषय पर के ऊपर लक्ष्य है। शुभपरिणाम का लक्ष्य स्व में होता है ? समझ में आया ?

इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है,.. यह अनन्त बार हुआ, उसकी बात करते हैं या नहीं ? तो अनन्त बार में देव-शास्त्र-गुरु का नहीं मिला इसे ? द्रव्यलिंगी अनन्त

बार हुआ, तो इसे देव-शास्त्र-गुरु मिले, उनका विषय-लक्ष्य था, वह ठीक है, (ऐसा) शुभभाव भी हुआ था परन्तु वह पररूप के विषय का शुभभाव हुआ। आहाहा! अनन्त बार समवसरण को देखा, भगवान को देखा अनन्त बार और अनन्त बार समवसरण में मणिरत्न के दीपक से भगवान की पूजा की। क्या हुआ? परवस्तु है। शुभभाव हुआ, पुण्यभाव हुआ। पर से पुण्य, वह तो बन्ध का कारण हुआ। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाए, हों! अरे! भगवान! भाई! भगवान के पास जा अब तू। परन्तु भगवान के पास जाए, ऐसी ताकत किसकी होगी इसकी? शोर वहाँ मचा, शोर वहाँ मचा, यहाँ तू सोनगढ़वालों को मत कह। आहाहा!

भाई! वस्तु एक और एक = दो जैसी है। अपना आत्मा वस्तु स्व को विषय करे, उसमें राग के भाग बिना विषय होता है। पर का विषय करे, उसमें राग फिर शुभ हो या अशुभ, दोनों राग हुए बिना पर का विषय नहीं होता। समझ में आया? बराबर है?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर कहा न, पुण्य-पाप का अन्तर है। शुभभाव में देव-शास्त्र-गुरु लक्ष्य में होते हैं; अशुभभाव में स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार-धन्धा लक्ष्य में होता है। पाप। इन दो के विषय में अन्तर है, परन्तु विषयरूप से-परद्रव्यरूप से एक हैं और बन्धरूप से राग एक ही प्रकार का है। शुभ-अशुभरूप से अन्तर व्यवहार से किया जाता है। आहाहा! इसे ऐसी स्व-पर के विवेक की समझ बिना यह स्व में स्थिर नहीं हो सकेगा। पर के लक्ष्य से स्व में जाया जाता होगा? या पर का लक्ष्य छोड़े तब स्व में जाया जाता है। तो जहाँ पर के लक्ष्य से लाभ माने, वह स्व में किस प्रकार आयेगा? आहाहा! होवे भले, होता है तो क्या है?

(रूप रसादि) का ग्रहण होता है,.. ज्ञान ग्रहण होता है उसमें से? सम्यग्दर्शन ग्रहण होता है। अनन्त बार द्रव्यलिंगी (हुआ)। यहाँ तो अनन्त बार की बात चलती है न? अनन्त बार ऐसा हुआ, ऐसा हुआ, संसार में होवे उसे राग-द्वेष होते हैं, राग-द्वेष होवें, उसे शरीर मिलता है; शरीर मिले, उसे इन्द्रियाँ मिलती हैं; इन्द्रियाँ मिले उसे विषय होते हैं। इन विषय में क्या मात्र भोग के ही विषय की बात है? नौवें ग्रैवेयक गया, तब समवसरण में गया था, देव-गुरु-शास्त्र के पास गया था, सुना वह कहाँ गया? वह किसमें गया? वह विषय में गया या कोई दूसरे विषय में गया?

मुमुक्षु : वह भी जहाँ विषय की बात आवे, वहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस भोग की बात समझता है। उसका लक्ष्य ही वह जाता है, परन्तु शास्त्र में कहा क्या ? उसमें नहीं ? काम-भोग-बन्धकथा '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**' यह काम अर्थात् राग और भोग अर्थात् भोगन। कर्ता और भोक्ता, राग और पुण्य-पाप का करना और भोगना, यही तूने सुना है। राग-द्वेषरहित आत्मा, भगवान आत्मा भिन्न है, यह बात तूने सुनी नहीं है। समझ में आया ?

उससे फिर राग और द्वेष होने लग जाते हैं। देखो ! ऐई ! तो यह शरीर मिला और पाँच इन्द्रिय मिली या खण्ड-खण्ड इन्द्रिय (मिली), उसका लक्ष्य ऐसे जाता है। जितेन्द्रिय में कहा है न ? समयसार ३१ गाथा में। पाँच इन्द्रिय का खण्ड-खण्डपना, द्रव्य इन्द्रिय का निमित्तपना और उसका सब विषय, उसमें से हटकर इस ओर जाए, तब विषय जीता कहलाये, जितेन्द्रिय कहलाये। आहाहा ! समझ में आया ?

फिर राग और द्वेष होने लग जाते हैं। बस ! वह तो राग-द्वेष ही करेगा। पर के प्रति लक्ष्य में वीतरागता कहाँ से आयी ? स्व के लक्ष्य बिना यह शरीर मिला, इन्द्रियाँ मिली और इन्द्रिय में से ऐसा किया, इसलिए वापस राग-द्वेष हुए, राग-द्वेष में से बन्ध हुआ, बन्ध से वापस शरीर मिला, शरीर से इन्द्रियाँ मिली। अनादि से ऐसा का ऐसा चक्र चलता जा रहा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा !

इस प्रकार जीव का संसाररूपी चक्रवात में भवपरिणमन होता रहता है,.. भवपरिणमन होता रहता है,.. समझ में आया ? है न ? क्या है उस ओर ? '**जिणवरेहिं भणिदो, अणादिणिधणो सणिधणो**' इतना है। यह तो यह शब्द कहाँ है, इतना देखना है, क्या ? 'भवपरिणमन' यह शब्द है। यह भवपरिणमन इसमें से निकाला है। '**संसारत्थो जीवो अनादिकालं संसारे भ्रान्तो भ्रमति**' यह इसमें से निकला। भवपरिणमन निकाला, लो न। भवपरिणमन है न यह। कहीं आत्मपरिणमन नहीं है। जीव में संसाररूपी चक्रवाल में भव का परिभ्रमण हुआ ही करता है। स्वर्ग-नरक, स्वर्ग-नरक, स्वर्ग-नरक सब दुःख।

ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। लो ! समझ में आया ? यह है न, '**जीवस्सेवं, भावो संसारचक्कवालंभि**' '**भावो**' है न ? यह। '**भावो संसारचक्कवालंभि। इदि जिणवरेहिं भणिदो**' ऐसा जिनेन्द्रदेव (कहते हैं)। यह जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा

कहते हैं कि तेरा संसार स्व के लक्ष्य बिना, स्व की रुचि बिना, परपदार्थ के लक्ष्य में ठीक-अठीक मानकर राग-द्वेष करके मिथ्यात्व के भाव से वह भटक रहा है। समझ में आया?

जो अनादि काल से होते हुए अनन्त काल तक होता रहेगा,.. जब तक पर में यह ठीक-अठीक.. ठीक-अठीक.. ठीक-अठीक.. इन पर के विषय में इन्द्रिय की ओर के लक्ष्य में रहेगा, तब तक ऐसा संसार ऐसा का ऐसा खड़ा रहेगा। इन्द्रियातीत भगवान आत्मा की दृष्टि करेगा तो... यह लेंगे थोड़ा, देखो! **हाँ, किन्हीं भव्यजीवों के उसका अन्त भी हो जाता है।** कहो, समझ में आया? किसी को अन्त भी (आ जाता है)। उसमें आया था न? इसलिए आ गया। मूल में है न? इसलिए आ गया। आहाहा! '**सणिधणो**' '**अणादिणिधणे सणिधणो**' है न शब्द में? किसी को अन्त भी आ जाता है। किस प्रकार? वह (परलक्ष्य) करते-करते, ऐसा नहीं। ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने विषय को छोड़कर ऐसे पर में लक्ष्य किया करे, वहाँ तक शुभाशुभराग हुआ करता है और एकत्वबुद्धि से संसार परिणमा ही करेगा। उसे छोड़कर स्व का-चैतन्य का आश्रय करने से पर की एकत्वबुद्धि छूटने पर राग-द्वेष एकत्व उसे नहीं रहेगा, संसार नहीं रहेगा, उसक परिभ्रमण छूट जाएगा।

दोहा – मथत दूध डोरीनितें, दंड फिरत बहु बार।
राग द्वेष अज्ञान से, जीव भ्रमत संसार।।११।।

यहाँ तो अज्ञानी के राग-द्वेष हैं। **मथत दूध डोरीनितें,..** डोरी से दूध मथत **दंड फिरत..** वह दण्ड घूमता है। **बहु बार। राग द्वेष अज्ञान से, जीव भ्रमत संसार।** इसका सार कहा।

मुमुक्षु : कर्म कहाँ गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म गये अन्दर। अन्दर राग गया। राग-द्वेष से कहा है न? समझ में आया? '**अज्ञानात्सुचिरं जीवः**' पाठ में तो यह है, देखो! क्या है? है न '**अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धो भ्रमत्यसौ**' अज्ञान से भटकने की बात है। अपना ज्ञान नहीं करता, शुद्धचैतन्य में विषय नहीं झुकाता। वह विषय यह.. यह.. यह.. किया ही करता है। अज्ञान से चार गति में भटकना होता है। विशेष प्रश्न करेंगे।.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)